कृष्ण रचित नाटक में अपनी भूमिका का निर्वाह

श्रीब्रह्ममध्व गौड़ीय सारस्वत संप्रदाय जययुक्त हों! मेरे प्रिय परमगुरुदेव परम आदरणीय श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद औरे मेरे प्रिय गुरुदेव परमपूजनीय श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी ठाकुर जययुक्त हों! परम भगवान श्रीकृष्ण ही मूल परमेश्वर हैं। एक नाटक रचने के लिए परम भगवान श्रीकृष्ण स्वयं का श्रीवासुदेव, श्रीसंकर्षण, श्रीप्रद्युम्न और श्रीअनिरुद्ध नामक चार प्रमुख रूपों में विस्तार करते हैं। कृष्ण की इच्छा पूर्ण करने हेतु संकर्षण अपना श्रीकारणोदकशायी महाविष्णु, श्रीगर्भोदकशायी महाविष्णु, श्रीक्षीरोदकशायी महाविष्णु, महासंकर्षण तथा शेष, इन पाँच रूपों में विस्तार करते हैं।

श्रीकारणोदकशायी महाविष्णु ने माया की ओर दृष्टिपात करके भौतिक ब्रह्माण्ड उत्पन्न किया। इस ब्रह्माण्ड को सुसज्जित करने के लिए गर्भोदकशायी महाविष्णुकी नाभि से कमलनाल की उत्पत्ति हुई। उस कमलनाल के ऊपर स्थित कमलपुष्प से सृष्टि के प्रथम जीव ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव हुआ। इस कमलनाल में सम्पूर्ण चौदह भुवन स्थित हैं। भु, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्य, ये सात लोक पृथ्वी के ऊपर हैं तथा तल, अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल और पाताल, ये सात लोक पृथ्वी के नीचे हैं। ये सभी लोक भौतिक जगत के ही अन्तर्गत हैं। ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव सर्वोच्च लोक सत्यलोक में हुआ है। भगवान ने ब्रह्माजी को जीवों की रचना करने को आदेश दिया। ब्रह्माजी द्वारा रचित विभिन्न प्रकार की प्रजातियों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है। ब्रह्माजी द्वारा कुल 84 लाख प्रजातियों की रचना की गई है। जीव जन्म–मरण के चक्र में घूमता हुआ इन 84 लाख योनियों में भ्रमण करता है। इन 84 लाख योनियों में 9 लाख प्रजातियाँ जलचर प्राणियों की, 20 लाख प्रजातियाँ पेड़ पौधों की, 11 लाख प्रजातियाँ कीड़े–मकौड़े तथा सरीसृप की, 10 लाख प्रजातियाँ पक्षियों की, 30 लाख प्रजातियाँ पशुओं की तथा 4 लाख प्रजातियाँ मनुष्यों की हैं।

यह भौतिक जगत एक रंगमंच की भाँति हैं जिसपर सभी जीव एक अभिनेता के समान हैं। किन्तु रंगमंच पर चल रहे इस नाटक में हमारी क्या भूमिका होनी चाहिए! हमारे लिए निर्मित इस रंगमंच पर हमें अपनी भूमिका से भगवान को प्रसन्न करना चाहिए। हमें भगवान की इन्द्रियों को संतुष्ट करना चहिए। भगवान ने मनुष्य को पर्याप्त बुद्धि एवं स्वतंत्रता प्रदान की है जिसके द्वारा वह इस भौतिक जगत के रंगमंच पर अपनी सही भूमिका निभा सकता है।

मनुष्य चाहे किसी भी वर्णाश्रम धर्म का क्यों ना हो, उसके मन में इन्द्रिय तृप्ति की लेशमात्र भी इच्छा नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए मनुष्य यदि गृहस्थ आश्रम में है तो उसे ऐसा मानना चाहिए कि उसका घर कृष्ण सेवा के लिए है तथा उसने कृष्ण की प्रसन्नता के लिए विवाह किया है। उसे कृष्ण सेवा के लिए संतान उत्पत्ति करनी चाहिए और अपनी संतान को कृष्ण सेवक के रूप में देखना चाहिए। संतान का लालन पालन उसे कृष्ण भक्ति से संबंधित ज्ञान प्रदान करते हुए करना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति संन्यास आश्रम में है तो उसे भी कृष्ण को ही अपनी दैनिक गतिविधियों के केन्द्र में रखना चाहिए। इस बात को अच्छी तरह से समझने के लिए एक वृत्त की कल्पना

कीजिए जिसके केन्द्र में एक बिन्दु है। ठीक इसी प्रकार कृष्ण भी सभी जीवों के जीवनरूपी वृत्त के केन्द्रबिंदु हैं। अपना जीवन समन्वयता से जीने के लिए हमारी सभी गतिविधियाँ कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही होनी चाहिए। इसलिए इस बात से कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि हम कौन से वर्णाश्रम में हैं, हमारी प्रेरणा का केन्द्र बिंदु एकमात्र कृष्ण ही होने चाहिए।

जितना हम कृष्ण से दूर जाऐंगे उतना ही हम माया के निकट जाते चले जाऐंगे और सरलता से मायाजाल में फँस जाऐंगे।

केवल इस मनुष्य जीवन में ही हम अपनी बुद्धि का उपयोग करने में सक्षम हैं। अगर हम ऐसा करते हैं तो हम इस भौतिक जगत में अपनी पीड़ा का मूल कारण समझ सकते हैं। हम सदैव अपने कष्टों से मुक्ति पाना चाहते हैं लेकिन हम सोचते हैं भौतिक सम्पत्ति अर्जित करके अपने कष्टों से मुक्ति पा सकते हैं। अपार सम्पत्ति अर्जित करके भी अंत में मृत्यु का सामना तो करना ही पड़ेगा। जिस मनुष्य को परम भगवान ने बुद्धि और स्वतंत्रता प्रदान की है, उस मनुष्य की ऐसी दुर्दशा देखकर वे भी दुःखी हो जाते हैं। इसीलिए हमें अपने कष्टों से मुक्ति का मार्ग दिखाने के लिए स्वयं भगवान अपने शुद्ध भक्तों के रूप में प्रकट होते हैं।

यह जानकारी हमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित एक प्रसिद्ध ग्रंथ श्रीचैतन्य चरितामृत से मिलती है –

गुरुकृष्णरूप हय शास्त्रेर प्रमाणे

गुरु रूपे कृष्ण कृपा करे भक्त गणे।

इस श्लोक का यही अर्थ है कि श्रीकृष्ण ही गुरु रूप में प्रकट होते हैं, सभी भक्त गुरु के माध्यम से ही कृष्ण कृपा प्राप्त करते हैं।

गुरु शब्द का अर्थ है 'भारी' क्योंकि गुरु श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि हैं। गुरु शब्द में दो अक्षर हैं, 'गु' का अर्थ है – अज्ञान रूपी अंधकार, 'रु' का अर्थ है – 'ज्योति' जिससे अन्धकार दूर हो जाता है। गुरु अपने स्वयं के आचरण से हमें भक्ति सिखाते हैं। इसलिए गुरु साधारण मनुष्य नहीं हैं। गुरु, कृष्ण के प्रतिनिधि द्वारा ही नियुक्त होने चाहिए।

गुरु अनेक प्रकार के होते हैं – सबसे पहले वर्त्म प्रदर्शक गुरु होते हैं जो हमें शुद्ध भक्तिमार्ग दिखाते हैं। उदाहरण के लिए मेरे बाल्यकाल में मेरे नानाजी श्रीमदनमोहन दास अधिकारी प्रभु (सभी गौड़ीय मठों एवं मिशन के संस्थापक आचार्य श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के शिष्य) ने अपनी भक्ति साधना से मुझे प्रेरित किया और वे मुझे अपने गुरु भाइयों के समीप ले जाते थे। मैं अपने नानाजी के अनेक गुरुभाइयों जैसे – पूज्यपाद श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद श्रील भक्तिरक्षक श्रीधरदेव गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद श्रील भक्तिकुसुम श्रवण गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद श्रील भक्तिकुमुद संत गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद श्रील भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद श्रील भक्तिकमल

मधुसूदन गोस्वामी महाराज पूज्यपाद श्रील भक्तिमयूख भागवत गोस्वामी महाराज एवं अन्य से मिला।

एक बार मेरे गुरुदेव मेरे नानाजी के घर पर आये थे और उनसे मिलते ही मैंने उनकी और तीव्र आकर्षण का अनुभव किया। उनकी नम्रता, दीनता, विद्वतता एवं अन्य वैष्णव गुणों ने मुझे उनकी ओर आकर्षित किया। मेरे नानाजी प्रायः कहते थे कि उनके सभी गुरुभाई जीवनमुक्त महापुरुष हैं। वे कहते थे, तुम जिसके प्रति आकर्षण का अनुभव कर रहे हो, तुम उनसे दीक्षा लेने के लिए स्वतंत्र हो, यदि वे तुम्हें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करें तो। इस प्रकार गुरुदेव से प्रथम भेंट के आठ वर्ष पश्चात् एवं अलग–अलग तरीकों से उनके द्वारा मेरी सहनशीलता के स्तर की परीक्षा करने के पश्चात् मेरे गुरुदेव पूज्यपाद श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी ठाकुर ने मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया। उदाहरण के लिये – जब मैं अपने गुरुदेव के पास पहली बार गया तो उन्होंने मुझसे कहा, ''तुमने गलत विकल्प चुना है क्योंकि मैं एक निर्धन ब्राह्मण संन्यासी हूँ और अपने गुरुभाई के मठ में रहता हूँ। मेरा कोई भी मठ–मन्दिर नहीं है। इसीलिए मुझसे दीक्षा लेकर तुम परेशान ही रहोगे। तुम्हारे लिए ऐसे आचार्य से दीक्षा लेना उचित होगा जिनके अनेक मठ–मंदिर हों। उनके साथ तुम्हारे पास रहने के लिए अनेक स्थान होगें।'' मैंने उनसे कहा, ''आपके पास मठ–मंदिर ना होने से मुझे कोई समस्या नहीं है। मैं आपसे ही दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।'' फिर उन्होंने कहा, ''तुम अभी बहुत छोटे हो, अभी तुम्हारी शिक्षा भी पूरी नहीं हुई है। यदि तुम स्नातक शिक्षा पूर्ण नहीं करते हो तुम शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को भी नहीं समझ पाओगे।'' मैं अपने वर्त्म प्रदर्शक गुरु, मेरे नानाजी के माध्यम से अपने दीक्षा गुरु तक पहुँचा था। मेरे गुरुदेव पूज्यपाद श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी ठाकुर से दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वे (मेरे नानाजी) मेरे शिक्षागुरु भी थे। मेरे गुरुदेव कहा करते थे, ''वर्तमान समय में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट मेरे सभी गुरुभाई तुम्हें शिक्षा प्रदान करने में सक्षम हैं।'' वे यह भी कहते थे कि श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के आचार्य पूज्यपाद श्रील भक्त्विल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज तथा श्रील चैतन्य गौड़ीय मठ के जनरल सैक्रेट्री पूज्यपाद श्रील भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज भी मुझे शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। इसलिए ये सभी मेरे शिक्षा गुरु हैं।

एक अन्य प्रकार का गुरु 'चैत्यगुरु' होता है जो हमारे हृदय में परमात्मा रूप में रहता है। वास्तव में ये क्षीरोदक्षायी विष्णु हैं जो सभी जीवों के हृदय में परमात्मा रूप में विद्यमान हैं। अन्ततः यह चैत्यगुरु ही हमारे समक्ष दीक्षागुरु के रूप में प्रकट होते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आप सभी हमारे जीवन में इन चारों प्रकार के गुरुओं की आध्यात्मिक भूमिका के इस संक्षिप्त विवरण को समझ गए होंगे।

आध्यात्मिकता का अर्थ, अपने मन को भगवान में तथा उनकी सेवाओं में नियुक्त करना है। दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु अपने आचरण से हमें अपने मन को भगवान में तथा उनकी सेवा में नियुक्त करना सिखाते हैं, इसलिए हमें उनके आनुगत्य में चलना चाहिए। हमें यह भी समझना चाहिए कि गुरु कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। गुरु परम भगवान श्रीकृष्ण के पूर्णतत्व हैं जो हमें दीक्षा देते हैं तथा हमारा मार्गदर्शन करते हैं, वे श्रीकृष्ण के वास्तविक प्रतिनिधि हैं। परम रसिक आचार्य श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर गुरु अष्टकम् में लिखते हैं – 'साक्षाद् हरित्वेन समस्त

शास्त्रै रुकतस्तथा भागवद् एवं सद्भि'। इसका अर्थ यही है कि जीव तक कृष्ण की कृपा उनके शुद्ध भक्त (गुरु) के माध्यम से ही आती है और सभी शास्त्रों में कहा गया है कि गुरु श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं, लेकिन दोनों में अंतर भी है। गुरु वृद्ध होते हैं लेकिन कृष्ण नहीं होते। गुरु के दाढ़ी–मूंछ होती हैं और उनके बाल भी सफेद होते हैं जबकि भगवान के ना तो दाढ़ी–मूंछ होती है और ना ही सफेद बाल होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, भगवान राम, भगवान कृष्ण के भी दाढ़ी–मूछ एवं सफेद बाल नहीं थे। कृष्ण बृहद् तथा परम ईश्वर हैं जबकि गुरु ब्रह्माण्ड को नियंत्रित नहीं कर सकते। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार गुरु, कृष्ण के जिस परिमाण में प्रिय होते हैं उतने ही परिमाण में गुरु में भगवद्ता होती है इसलिए वे कृष्ण से भिन्न हैं।

कृष्ण मायाधीश हैं जबकि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के गीत (नाम महात्मय) के अनुसार गुरु मायाजाल में पतित हो सकते हैं–

प्रथमें छिलेन तिनि सद्गुरु प्रधान

क्रमेनाम अपराधे हय हतज्ञान

वैष्णवे विद्वेष करि छाड़े नामरस

क्रमे क्रमे हय अर्थ कामिनिर वास

पहले जो सद्गुरु प्रधान थे, बाद में लाभ–पूजा–प्रतिष्ठा की आशा और साधुनिंदा के कारण नाम–अपराध हो जाने से उनका नाम जप में रस छूट जाता है और क्रमशः वे अर्थ और काम में आसक्त हो जाते हैं।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर लिखते हैं – ''अपराध के कारण मनुष्य हरिनाम का आस्वादन नहीं कर पाता।

दिव्य हरिनाम भक्ति के सभी रसों का मूल तत्व है। निरपराध हरिनाम करने से एक व्यक्ति अपने हृदय में इन दिव्य रसों का अनुभव कर सकता है। शुद्धता से हरिनाम करने से हृदय में आनन्द उत्पन्न होता है, आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है और अन्य सात्विक विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने से भी अगर इन भावों का अनुभव नहीं होता तो समझना चाहिए कि अपराध के कारण हृदय वज्र के समान हो गया है।

साधक का कर्त्तव्य है कि वह अपराध रहित होकर नाम जप करें। अश्रद्धालु व्यक्ति को हरे कृष्ण महामंत्र जप का उपदेश देने वाला व्यक्ति नामापराधी होता है। सूअर को मोती देने से कोई लाभ नहीं होता क्योंकि उसके लिए मोती का कोई महत्व नहीं है। इसलिए जिस व्यक्ति की हरेकृष्ण महामंत्र जप में श्रद्धा नहीं है उसे नाम जप का उपदेश देना अनुचित है।

इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि पहले हम उस व्यक्ति को हरिनाम की महिमा बताकर उसमें नाम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करें। जब ऐसे व्यक्ति में श्रद्धा उत्पन्न हो जाये तो हम उन्हें हरिनाम जप करने को कह सकते हैं। जो व्यक्ति मिथ्या अभिमान के कारण स्वयं को गुरु मानकर अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम दीक्षा प्रदान करते हैं वे हरिनाम के प्रति अपराध के कारण अपनी स्थिति से पतित हो जाते हैं। शास्त्रों के अनुसार श्रीकृष्ण ही नाम रूप में इस भौतिक जगत में प्रकट हुए हैं। यद्यपि देखने में ये केवल अक्षर हैं लेकिन हरिनाम कृष्ण का ही दिव्य स्वरूप है।''

नाम और नामी में कोई भेद नहीं होता, मन में ऐसा भाव रखते हुए कि श्रीकृष्ण अपने नित्यधाम गोलोक वृंदावन से अपने नाम के रूप में यहाँ प्रकट हुए हैं और हम इस भौतिक जगत में कृष्ण के इस रंगमंच पर अपनी भूमिका निभा रहे हैं।

परम भगवान श्रीकृष्ण से अपना नित्य संबंध स्थापित करने के लिए हमें अपने दैनिक जीवन में भक्ति के सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए और गुरु–वैष्णव का संग करना चाहिए।

मैं पहले ही बता चुका हूँ कि हमें श्रीकृष्ण को किस प्रकार अपने जीवन के केन्द्र में रखना चाहिए। एक गृहस्थ के रूप में हम जो भी कार्य करते हैं वह भक्ति के सिद्धान्तों के अनुरूप और श्रीकृष्ण से संबंधित होना चाहिए। जैसे – हम जो भी धनोपार्जन करते हैं उसे कृष्ण परिवार के पालन–पोषण में लगाना चाहिए। हम जो भी भोजन पकाते हैं उसे कृष्ण को अर्पित कर प्रसाद सेवन करना चाहिए। हमें कृष्ण और उनके भक्तों से संबंधित तीर्थों का भ्रमण करना चाहिए। इस प्रकार हम अपनी सभी गतिविधियों को कृष्ण की सेवा में संलग्न कर उनसे अपना संबंध स्थापित कर सकते हैं।

सभी जीव वैष्णव हैं क्योंकि सभी जीवों की उत्पत्ति विष्णु से हुई है। हम भगवान की सेवा नहीं कर पाते हैं। हमें अपने मन को भगवान की सेवा में लगाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यह भौतिक जगत दुःख से भरा हुआ है। आर्थिक सफलता, भौतिक शिक्षा में सफलता एवं अन्य कई प्रकार की सफलताएं प्राप्त करके भी हमें अपने जीवन में एक रिक्त स्थान का अनुभव होता है। उस रिक्त स्थान का कारण हमारा श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त हमारी वास्तविक भूमिका का निर्वाह नहीं करना ही है। हमारी वास्तविक भूमिका श्रीकृष्ण का नित्य दास बनना और उनकी सेवा में नियुक्त होना है। ऐसा करके ही हम चौरासी लाख योनियों में जन्म–मरण के चक्र से छूट सकते हैं। हमें अपने नित्य स्वरूप को पहचान कर श्रीकृष्ण से अपना संबंध स्थापित कर इस दुःखमयी संसार सागर से अपना उद्धार करना चाहिए।

मनुष्य के रूप में हमारा मुख्य कर्तव्य है कि हम अपने लौकिक कार्यों और आध्यात्मिक साधना के मध्य उचित समन्वय रखते हुए अपने नित्य स्वरूप को स्थापित करें। क्योंकि हम लौकिक जगत में रह रहे हैं इसलिए हम अपने लौकिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा नहीं कर सकते। नित्य स्वरूप की प्राप्ति तथा शुद्ध भक्तिपथ पर चलने में सहायता के लिए हमें साधुसंग करना चाहिए।

मनुष्य अपना स्वभाव, संस्कृति और भाषा अपने संग से ही प्राप्त करता है। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने पद्मपुराण की भविष्यवाणी, 'हृतकाले पुरुषोत्तमत' तथा श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी पाद द्वारा रचित श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृत में उनकी स्वयं की भविष्यवाणी कि प्रत्येक नगर व ग्राम में मेरा प्रचार होगा को पूर्ण करने के लिए अपने पार्षदों को भेजा। श्रीमन् महाप्रभु ने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के माध्यम से श्रीजगन्नाथपुरी में मेरे परमगुरुदेव श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद को भेजा और उनको चैतन्यमठ और श्रीगौड़ीय मठ के नाम से अनेक भक्ति केन्द्रों की स्थापना के लिए आवश्यक बल प्रदान किया। श्रील प्रभुपाद ने वर्ष 1936 में मायापुर में अपने अंतिम व्यासपूजा उत्सव में दिये गये व्याख्यान में अपने शिष्यों को 'विनद उद्धारण बान्धव' कहा। उनके व्याख्यान का अंश इस प्रकार है–

''हम भगवान को नहीं देख सकते लेकिन जो भगवान के शुद्ध भक्त उनकी सेवा में नियुक्त हैं, वे हम पर कृपा करते हुए हमें भगवद् दर्शन की योग्यता प्रदान करते हैं। हमें उनके क्रियाकलापों का अनुसरण करना चाहिए क्योंकि एकमात्र वे ही हमारे मंगल के साधन हैं। अपने अल्पज्ञान तथा अल्प अनुभव के कारण बहुत से लोग भगवान के भक्तों की मानसिकता की तुलना दासत्व की मानसिकता से करते हैं। ऐसे मूर्ख व्यक्तियों को जो अच्छा लगता है वो वही कहते हैं, उन्हें कहने दो। किन्तु हमारी अवधारणा इस प्रकार होनी चाहिए –

परिवदतु जनो यथा तथा वा ननु मुखरो ना वयम विचारायमः

हरिरस मदिरा मदति मत्त भुवि विलुथम नटम निरविसम्।

हम भक्तों के चरणों में लोट–पोट होंगे। हम किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनायेंगे। हमने किसी को भी अपना शिष्य ना तो बनाया है और ना बनाएँगे। क्योंकि अगर ऐसा हुआ तो हम अभक्तों के कार्यों से लालायित होकर गलत दिशा में चल पड़ेगे। आप सभी मेरे गुरु हैं। इस पतित आत्मा को अपना शिष्य मानकर इस पर कृपा कीजिए।''

मेरे परम गुरुदेव के इस भौतिक जगत से अप्रकट होने के पश्चात् श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के मिशन को आगे बढ़ाने और श्रील प्रभुपाद की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए मेरे गुरुदेव पूज्यपाद श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी ठाकुर ने श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ की, मेरे शिक्षा गुरु पूज्यपाद श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की, पूज्यपाद श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने चैतन्य सारस्वत मठ की, पूज्यपाद श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज ने गौड़ीय वेदान्त समिति की, पूज्यपाद श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी गोस्वामी महाराज ने इस्कॉन की, पूज्यपाद श्रील भक्तिसारंग गोस्वामी महाराज ने श्रीश्री गौर नित्यानंद मठ की एवं अन्यान्य शिष्यों ने भी अनेक मठों की स्थापना की।

हमारे गुरुवर्ग द्वारा स्थापित सभी संस्थाओं तथा उनके सदस्यों का परम लक्ष्य अपनी गतिविधियों के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति का मन श्रीकृष्ण और उनकी सेवा में लगाना है। अगर हम आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलना चाहते हैं तो हमें अपने से श्रेष्ठ भक्तों का संग करना चाहिए। इन संस्थाओं में हमें उस स्थान का संग करना चाहिए जो पंथ निरपेक्ष हो, दूसरे को

छोटा–बड़ा ना कहते हों और सभी संस्थाओं और भक्तों से जिनका अनुकूल संबंध हो। ऐसा होने से हम भगवान श्रीचैतन्य द्वारा प्रदत्त प्रेम का आस्वादन कर पाएँगे। अपने नित्य स्वरूप को प्राप्त करने का यह सर्वोत्तम उपाय है।

मैं विनम्रतापूर्वक अपने गुरुदेव तथा श्रीब्रह्ममध्य गौड़ीय सारस्वत सम्प्रदाय के सभी भक्तों से प्रार्थना करता हूँ कि आप इस पतित जीव पर अपनी कृपा करें और मुझे अपने शेष जीवन में अपने आचरण द्वारा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की प्रेमाभक्ति प्रचार की अभिलाषा पूर्ण करने की तथा आपके आनुगत्य में कृष्ण के नाटक में अपनी भूमिका भलीभाँति निर्वाह करने की शक्ति प्रदान करें।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के मिशन की सेवा में आपका –

एवं

शुद्धभक्तों के चरणकमलों की रज का अभिलाषी –

श्रील भक्तिविबुध बोधायन गोस्वामी

सभापति आचार्य– श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ

www.GopinathGaudiyäMath.com
www.PrabhupadaRays.com